

Chapter चौदह

राजा चित्रकेतु का शोक

इस चौदहवें अध्याय में परीक्षित महाराज अपने गुरु शुकदेव गोस्वामी से पूछते हैं कि वृत्रासुर जैसा असुर परम भक्त कैसे बना। इस प्रसंग में वृत्रासुर के पूर्वजन्म का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें चित्रकेतु की कथा एवं उसके पुत्र की मृत्यु से उत्पन्न शोक का विवरण है।

लाखों जीवात्माओं में मनुष्यों की संख्या अत्यल्प है और इन मनुष्यों में से जो वास्तव में धर्मात्मा हैं कुछ ही भव-बंधन से मुक्त होने के लिए उत्सुक रहते हैं। छुटकारा चाहने वाले हजारों व्यक्तियों में से केवल एक को अवांछित व्यक्तियों की संगति अथवा भौतिक कल्मष से मुक्ति मिल पाती है। ऐसे लाखों मुक्त मनुष्यों में से कोई विरला ही भगवान् नारायण का भक्त बन पाता है। अतः ऐसे भक्त अत्यन्त दुर्लभ हैं। चूँकि भक्ति सामान्य नहीं होती, अतः परीक्षित महाराज आश्चर्यचकित थे कि एक असुर को क्योंकर भक्त का इतना उच्च पद प्राप्त हो सका? सन्देह होने के कारण उन्होंने अपने गुरु शुकदेव गोस्वामी से पूछा, जिन्होंने शूरसेन के राजा चित्रकेतु के रूप में वृत्रासुर के पूर्वजन्म का वृत्तान्त कह सुनाया।

चित्रकेतु निःसन्तान था। सौभाग्य से उसकी भेंट महर्षि अंगिरा से हो गई। जब अंगिरा ने राजा से कुशल-क्षेम पूछा तो उसने अपनी चिन्ता अभिव्यक्त की, अतः उन महर्षि के अनुग्रह से राजा की प्रथम पत्नी कृतद्युति के गर्भ के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो प्रसन्नता तथा शोक दोनों का कारण बना। इस पुत्र के जन्म से राजा तथा राजमहल के सभी निवासी अत्यन्त प्रसन्न थे, किन्तु कृतद्युति की सौतेली ईर्ष्यालु थीं और बाद में उन्होंने उसे विष खिला दिया। अपने पुत्र की मृत्यु के शोक से चित्रकेतु अत्यधिक विचलित हो गया। तब नारद मुनि तथा अंगिरा उसे देखने गए।

श्रीपरीक्षिदुवाच

रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन्वृत्रस्य पाप्मनः ।

नारायणे भगवति कथमासीद्दृढा मतिः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-परीक्षित् उवाच—राजा परीक्षित ने पूछा; रजः—रजोगुण; तमः—तमोगुण; स्व-भावस्य—स्वभाव वाला; ब्रह्मन्—हे विद्वान ब्राह्मण; वृत्रस्य—वृत्रासुर का; पाप्मनः—जो पापी था; नारायणे—भगवान् नारायण में; भगवति—श्री भगवान्; कथम्—किस प्रकार; आसीत्—थी; दृढा—अत्यन्त दृढ़; मतिः—चेतना, भक्ति।

राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा—हे विद्वान ब्राह्मण! रजो तथा तमो गुणों से आविष्ट होने के कारण असुर सामान्यतः पापी होते हैं। तो फिर वृत्रासुर भगवान् नारायण के प्रति इतना परम प्रेम किस प्रकार प्राप्त कर सका ?

तात्पर्य : इस भौतिक जगत में प्रत्येक प्राणी रजो तथा तमो गुणों से ग्रस्त रहता है। किन्तु जब तक कोई इन गुणों पर विजय प्राप्त करके सात्त्विकता के स्तर पर नहीं पहुँच जाता तब तक उसके शुद्ध भक्त बनने की संभावना नहीं है। इसकी पुष्टि स्वयं भगवान् कृष्ण ने *भगवद्गीता* (७.२८) में की है—

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।

ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥

“जिन मनुष्यों ने पूर्वजन्म में पुण्यकर्म किये हैं तथा इस जन्म में जिनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये हैं तथा जो मोह के द्वन्द्व से मुक्त हो चुके हैं, वे निष्ठापूर्वक मेरी सेवा में तत्पर होते हैं।” चूँकि वृत्रासुर असुर था, अतः महाराज परीक्षित को आश्चर्य हुआ कि वह परम भक्त का पद क्योंकर प्राप्त कर सका ?

देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम् ।

भक्तिर्मुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥ २ ॥

शब्दार्थ

देवानाम्—देवताओं का; शुद्ध-सत्त्वानाम्—जिनके मन विमल हैं; ऋषीणाम्—महान् साधु पुरुषों के; च—तथा; अमल-आत्मनाम्—जिन्होंने अपने जन्म को पवित्र कर लिया है; भक्तिः—भक्ति; मुकुन्द-चरणे—मुक्तिदायक भगवान् मुकुन्द के चरण कमलों में; न—नहीं; प्रायेण—प्रायः; उपजायते—उपजती है, बढ़ती है।

प्रायः सत्त्वमय देवता तथा भौतिक सुख-रूपी रज से निष्कलंक ऋषि अत्यन्त कठिनाई से मुकुन्द के चरण-कमलों की शुद्ध भक्ति कर पाते हैं। [तो फिर वृत्रासुर इतना बड़ा भक्त किस प्रकार बन सका ?]

रजोभिः समसङ्ख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः ।
तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

रजोभिः—कणों से; सम-सङ्ख्याताः—समान संख्या में; पार्थिवैः—पृथ्वी के; इह—इस संसार में; जन्तवः—जीवात्माएँ;
तेषाम्—उनकी; ये—जो; केचन—कुछ; ईहन्ते—कार्य करते हैं; श्रेयः—धार्मिक सिद्धान्तों के लिए; वै—निस्सन्देह;
मनुज-आदयः—मनुष्य इत्यादि ।

इस भौतिक जगत में जीवात्माओं की संख्या उतनी ही है जितने कि धूल कण। इन जीवात्माओं में से कुछ ही मनुष्य होते हैं और उनमें से कुछ ही धार्मिक नियमों के पालन में रुचि दिखलाते हैं।

प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम ।
मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

प्रायः—प्रायः, लगभग सदा; मुमुक्षवः—मुक्ति के इच्छुक लोग; तेषाम्—उनका; केचन—कुछ; एव—निस्सन्देह; द्विज-
उत्तम—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ; मुमुक्षूणाम्—मुक्ति पाने के इच्छुक लोगों का; सहस्रेषु—हजारों में से; कश्चित्—कोई एक;
मुच्येत—वास्तव में मुक्ति लाभ करता है; सिध्यति—सिद्ध (पूर्ण) होता है ।

ब्राह्मण-श्रेष्ठ हे शुकदेव गोस्वामी! धार्मिक नियमों का पालन करने वाले अनेक मनुष्यों में से कुछ ही भौतिक जगत से मुक्ति पाने के इच्छुक रहते हैं। मुक्ति चाहने वाले हजारों में से किसी एक को वास्तव में मुक्ति-लाभ होता है और वह समाज, मित्रता, प्यार, देश, घर, स्त्री तथा सन्तान के प्रति अपनी आसक्ति का परित्याग कर पाता है। ऐसे हजारों मुक्त पुरुषों में से मुक्ति का वास्तविक अर्थ जानने वाला कोई विरला ही होता है।

तात्पर्य : मनुष्यों की चार श्रेणियाँ हैं—कर्मि, ज्ञानी, योगी तथा भक्त। इस श्लोक में जो कुछ कहा गया है, वह विशेष रूप से कर्मियों तथा ज्ञानियों के लिए है। इस भौतिक संसार में कर्मी एक शरीर बदल कर दूसरे में प्रसन्न रहना चाहता है। उसका उद्देश्य, चाहे यह लोक हो या परलोक, शारीरिक सुख रहता है। किन्तु जब वही व्यक्ति ज्ञानी हो जाता है, तो वह भौतिक बन्धन से छूटना चाहता है। मुक्ति की आकांक्षा रखने वाले ऐसे अनेक व्यक्तियों में से वास्तव में एक ही इस जीवन

में मुक्ति पा सकता है। ऐसा व्यक्ति समाज, मित्रता, प्यार, देश, परिवार, पत्नी तथा सन्तान के प्रति अपनी आसक्ति का परित्याग कर देता है। ऐसे अनेक व्यक्तियों में जो वानप्रस्थ आश्रम के स्तर पर होते हैं, विरला कोई संन्यासी बनने के महत्त्व को समझ पाता है।

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ।

सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

मुक्तानाम्—मुक्त पुरुषों में से; अपि—भी; सिद्धानाम्—सिद्ध पुरुषों में से; नारायण-परायणः—ऐसा मनुष्य जिसने यह निष्कर्ष निकाला है कि नारायण हैं; सु-दुर्लभः—अत्यन्त दुर्लभ है, कठिनाई से प्राप्त होता है; प्रशान्त—परम शान्त; आत्मा—जिसका मन; कोटिषु—करोड़ों में से; अपि—भी; महा-मुने—हे परम साधु!

हे परम साधु! लाखों मुक्त तथा मुक्ति के ज्ञान में पूर्ण पुरुषों में से कोई एक भगवान् नारायण अथवा कृष्ण का भक्त हो सकता है। ऐसे भक्त, जो परम शान्त हों, अत्यन्त दुर्लभ हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने इस श्लोक का तात्पर्य इस प्रकार से दिया है। केवल मुक्ति की इच्छा अपर्याप्त है, मनुष्य को यथार्थ में मुक्त होना चाहिए। जब मनुष्य जीवन की भौतिकता की निरर्थकता को समझ लेता है, तो उसे उच्च ज्ञान होता है और परिवार, स्त्री तथा सन्तान से विरक्त होकर वानप्रस्थ आश्रम में स्थित हो जाता है। मनुष्य को चाहिए कि वह अग्रसर होता हुआ संन्यास-पद को प्राप्त करे, जिससे भौतिक जीवन में फिर से गिर कर कष्ट न उठाना पड़े। यद्यपि मनुष्य मुक्त होने की आकांक्षा करता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह मुक्त हो गया। कोई विरला ही मुक्त हो पाता है। निस्सन्देह अनेक लोग मुक्त होने के उद्देश्य से संन्यास ग्रहण करते हैं, किन्तु अपूर्ण होने के कारण वे पुनः स्त्री, भौतिक कार्यकलापों, सामाजिक कार्य आदि के प्रति आसक्त हो जाते हैं।

भक्ति से रहित ज्ञानी, योगी तथा कर्मी अपराधी कहलाते हैं। श्री चैतन्य महाप्रभु का कथन है—*मायावादी कृष्णो अपराधी*—जो यह सोचने के स्थान पर कि प्रत्येक वस्तु श्रीकृष्ण है, यह

सोचता है कि माया ही सब कुछ है, वह अपराधी कहलाता है। यद्यपि मायावादी कृष्ण के चरणारविन्द के प्रति अपराधी हैं, किन्तु तो भी उनकी गणना सिद्धों में की जा सकती है, अर्थात् जिन्होंने आत्मा का अनुभव किया है। उन्हें आत्म-सिद्धि के निकटतर माना जा सकता है, क्योंकि उन्होंने कम से कम आत्मजीवन का साक्षात्कार किया है। यदि ऐसा व्यक्ति *नारायण-परायण* हो जाता है, तो वह *जीवन्मुक्त* मनुष्य से श्रेष्ठ है। इसके लिए उच्चतर बुद्धि की आवश्यकता होती है।

ज्ञानी दो प्रकार के होते हैं—एक वे जो भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं और दूसरे निर्गुण अनुभूति की ओर। मायावादी सामान्यतः वृथा ही अथक प्रयास करते हैं, अतः यह कहा जाता है वे कि बिना दानों के धान को कूटने वाले हैं (*स्थूल-तुषावघातिनः*)। ज्ञानियों की दूसरी कोटि में भी, जिनमें ज्ञान तथा भक्ति का मिश्रण होता है, दो प्रकार हैं—वे जो श्रीभगवान् के तथाकथित मिथ्या रूप की सेवा करते हैं और वे जो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् को असली आध्यात्मिक सच्चिदानन्द विग्रह के रूप में जानते हैं। मायावादी भक्त नारायण या विष्णु की अर्चना इस भाव से करते हैं कि विष्णु ने मायारूप अंगीकार किया है और परम सत्य वस्तुतः निर्गुण है। किन्तु शुद्ध भक्त यह कभी भी नहीं सोचता कि विष्णु ने माया का शरीर स्वीकार किया है, वरन् उसे यह पता रहता है कि आदि परम सत्य ही परम पुरुष है। ऐसा भक्त वास्तव में ज्ञानी है। वह कभी भी ब्रह्म-तेज में तदाकार नहीं होता। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* (१०.२.३२) में कहा गया है—

येऽन्येरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनाहतयुष्मदङ्घ्रयः ॥

“हे ईश्वर! जो अपने आपको मुक्त समझते हैं, किन्तु भक्ति से रहित हैं, उनकी बुद्धि विमल नहीं है। भले ही वे तपस्या के द्वारा मुक्ति के परम स्तर को प्राप्त कर लें, किन्तु वे इस संसार में दुबारा अवश्य गिरेंगे क्योंकि वे आपके चरणकमलों की शरण में नहीं आते।” इसका प्रमाण *भगवद्गीता* में भी (९.११) दिया गया है, जहाँ भगवान् कहते हैं—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

“जब मैं मनुष्य रूप में अवतार लेता हूँ तो मूर्ख मेरा उपहास करते हैं। वे मेरी दिव्य प्रकृति तथा सर्वत्र मेरे परम साम्राज्य को नहीं जानते।” जब मूढ़ यह देखते हैं कि कृष्ण मनुष्य की ही तरह आचरण करते हैं, तो वे भगवान् के दिव्य रूप का उपहास करते हैं, क्योंकि वे परम भावम् अर्थात् उनके दिव्य रूप तथा कार्यों से परिचित नहीं होते। भगवद्गीता (९.१२) में ऐसे व्यक्तियों का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचतेसः ।

राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥

“जो इस प्रकार सम्मोहित हैं, वे आसुरी तथा अनीश्वरवादी विचारों से आकर्षित होते हैं। उस मोहमयी अवस्था में उनकी मुक्ति की आशा, उनके सकाम कर्म तथा उनके ज्ञान का अनुशीलन—ये सभी निष्फल हो जाते हैं।” ऐसे मनुष्य यह नहीं जान पाते कि कृष्ण का शरीर भौतिक नहीं है। कृष्ण के शरीर और उनके आत्मा में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु अल्पज्ञ कृष्ण को मनुष्य मानकर उनका उपहास करते हैं। वे यह सोच नहीं पाते कि कृष्ण जैसा व्यक्ति समस्त वस्तुओं का उद्गम कैसे हो सकता है (गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि)। ऐसे व्यक्तियों को मोघाशाः अर्थात् निष्फल मनोरथ वाले कहा जाता है। वे भविष्य में जो भी चाहते हैं, वह निष्फल हो जाता है। यहाँ तक कि यदि वे ऊपर-ऊपर भक्ति में प्रवृत्त होते हैं, तो भी उन्हें मोघाशाः कहा जाता है क्योंकि वे अन्ततोगावा ब्रह्म-तेज में मिल जाना चाहते हैं।

जो लोग अपनी भक्ति से स्वर्गलोक पहुँचना चाहते हैं वे भी निराश हो जाएंगे क्योंकि यह भक्ति का परिणाम नहीं है। फिर भी उन्हें भक्ति में प्रवृत्त होकर शुद्ध बनने का अवसर दिया जाता है। श्रीमद्भागवत (१.२.१७) में कहा गया है—

शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।

हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥

“भगवान् श्रीकृष्ण, जो प्रत्येक प्राणी के हृदय में परम आत्मा हैं और सच्चे भक्तों के कल्याणकर्ता हैं, उस भक्त के हृदय को भौतिक सुख की कामना से रहित कर देते हैं, जो उनके संदेशों का रसास्वाद करता है, जो ठीक से सुने तथा जपे जाने पर स्वयं में सद्गुणयुक्त हैं।”

जब तक हृदय के भीतरी छोर से मल नहीं निकल जाता, मनुष्य शुद्ध भक्त नहीं बन सकता। इसलिए इस श्लोक में सुदुर्लभ शब्द का प्रयोग किया गया है। सैकड़ों तथा हजारों नहीं बल्कि लाखों पूर्णतया मुक्त आत्माओं में से विरला कोई शुद्ध भक्त होता है। इसलिए यहाँ पर कोटिष्व अपि शब्द व्यवहृत हुए हैं। श्रील मध्वाचार्य ने तंत्र भागवत से निम्नलिखित उद्धरण दिए हैं—

नव कोट्यस्तु देवानामृषयः सप्तकोटयः ।

नारायणायनाः सर्वे ये केचित् तत्परायणाः ॥

“नौ करोड़ देवता तथा सात करोड़ ऋषि भगवान् नारायण के भक्तनारायणायन कहलाते हैं। इनमें से कुछ ही ‘नारायण-परायण’ कहलाते हैं।”

नारायणायना देवा ऋष्याद्यास्तत्परायणाः ।

ब्रह्माद्याः केचनैव स्युः सिद्धो योग्यसुखं लभन् ॥

सिद्धों तथा नारायण-परायणों में यही अन्तर है कि प्रत्यक्ष भक्त तो नारायण-परायण हैं, किन्तु जो विभिन्न प्रकार का योग साधते हैं, वे सिद्ध कहलाते हैं।

वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ।

इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत्सङ्ग्राम उल्बणे ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

वृत्रः—वृत्रासुर; तु—लेकिन; सः—वह; कथम्—किस प्रकार; पापः—(आसुरी शरीर प्राप्त करने में) यद्यपि पापी; सर्व-लोक—तीनों लोकों का; उपतापनः—कष्ट का कारण; इत्थम्—ऐसा; दृढ-मतिः—दृढ़ बुद्धि; कृष्णे—कृष्ण में; आसीत्—था; सङ्ग्रामे उल्बणे—युद्ध की ज्वाला में।

वृत्रासुर युद्ध की धधकती ज्वाला में स्थित था और पापी असुर अन्यो को सदैव कष्ट तथा चिन्ता पहुँचाने के लिए कुख्यात था। ऐसा असुर किस प्रकार इतना बड़ा कृष्ण भक्त हो

सका ?

तात्पर्य : यह बतलाया जा चुका है कि किस प्रकार लाखों तथा करोड़ों व्यक्तियों में से कोई एक विरला ही शुद्ध भक्त अर्थात् नारायण-परायण होता है। अतः परीक्षित महाराज को आश्चर्य हो रहा था कि वह वृत्रासुर, जिसका ध्येय अन्यों को कष्ट तथा चिंता पहुँचाना था, युद्धभूमि में भी ऐसे भक्तों में से एक था। वृत्रासुर की उन्नति का क्या कारण था ?

अत्र नः संशयो भूयाञ्छ्रोतुं कौतूहलं प्रभो ।
यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अत्र—इस सम्बन्ध में; नः—हमारा; संशयः—सन्देह; भूयान्—अत्यधिक; श्रोतुम्—सुनने के लिए; कौतूहलम्—उत्कंठा, कुतूहल; प्रभो—हे प्रभो; यः—जो; पौरुषेण—पराक्रम से; समरे—युद्ध में; सहस्र-अक्षम्—जिनके एक हजार नेत्र हैं, भगवान् इन्द्र को; अतोषयत्—सन्तुष्ट किया, प्रसन्न कर लिया।

हे प्रभो, शुकदेव गोस्वामी! यद्यपि वृत्रासुर पापी असुर था, किन्तु उसने सर्वाधिक उन्नत क्षत्रिय का पराक्रम दिखाकर युद्ध में इन्द्र को प्रसन्न कर लिया। ऐसा असुर भगवान् कृष्ण का महान् भक्त क्योंकर हो सका ? इन विरोधी बातों से मेरे मन में अत्यधिक सन्देह उत्पन्न हो गया है, अतः मैं इस सम्बन्ध में आपसे सुनने के लिए अत्यधिक उत्सुक हूँ।

श्रीसूत उवाच

परीक्षितोऽथ सम्प्रश्नं भगवान्बादरायणिः ।
निशम्य श्रद्धानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

श्री-सूतः उवाच—श्री सूत गोस्वामी ने कहा; परीक्षितः—महाराज परीक्षित का; अथ—इस प्रकार; सम्प्रश्नम्—श्रेष्ठ प्रश्न; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; बादरायणिः—व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गोस्वामी; निशम्य—सुनकर; श्रद्धानस्य—अपने श्रद्धालु शिष्य का; प्रतिनन्द्य—अभिनन्दन करते हुए; वचः—शब्द; अब्रवीत्—बोले।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा—महाराज परीक्षित के इस उत्तम प्रश्न को सुनकर परम शक्तिमान ऋषि शुकदेव गोस्वामी अपने शिष्य को अत्यन्त प्रेमपूर्वक उत्तर देने लगे।

श्रीशुक उवाच

शृणुष्व्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ।
श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदादेवलादपि ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; शृणुष्व—सुनो; अवहितः—अत्यन्त ध्यान से; राजन्—हे राजा;
इतिहासम्—इतिहास को; इमम्—इस; यथा—जिस प्रकार; श्रुतम्—सुना हुआ; द्वैपायन—व्यासदेव के; मुखात्—मुँह से;
नारदात्—नारद से; देवलात्—देवल ऋषि से; अपि—भी।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा—हे राजन्! मैं उस इतिहास को तुमसे कहूँगा जिसे मैंने
व्यासदेव, नारद तथा देवल के मुखों से सुना है। इसे ध्यानपूर्वक सुनो।

आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप ।
चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत्कामधुङ्मही ॥ १० ॥

शब्दार्थ

आसीत्—था; राजा—एक राजा; सार्व-भौमः—चक्रवर्ती राजा; शूरसेनेषु—शूरसेन नामक देश में; वै—निस्सन्देह; नृप—
हे राजन्; चित्रकेतुः—चित्रकेतु; इति—इस प्रकार; ख्यातः—विख्यात; यस्य—जिसकी; आसीत्—थी; काम-धुक्—
समस्त आवश्यकताओं को प्रदान करने वाली; मही—पृथ्वी।

हे राजा परीक्षित! शूरसेन प्रदेश में चित्रकेतु नाम का एक चक्रवर्ती राजा था। उसके
राज्य में पृथ्वी से जीवन की समस्त आवश्यक वस्तुएँ उत्पन्न होती थीं।

तात्पर्य : यहाँ पर सबसे महत्त्वपूर्ण कथन यह है कि राजा चित्रकेतु के राज्यकाल में पृथ्वी
समस्त आवश्यक वस्तुएँ उत्पन्न करती थी। जैसाकि ईशोपनिषद् (मंत्र १) में कहा गया है—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥

“इस ब्रह्माण्ड में स्थावर-जंगम जो कुछ भी है, वह भगवान् द्वारा नियंत्रित है और उन्हीं की
सम्पत्ति है। अतएव अपने लिए उन्हीं आवश्यक वस्तुओं को ग्रहण करना चाहिए जो उसके हिस्से
के रूप में अलग रखी गई हैं और ऐसा जानकर दूसरे की वस्तुओं को स्वीकार नहीं करना
चाहिए।” परम नियन्ता कृष्ण ने इस भौतिक जगत की सृष्टि की, जिसमें किसी प्रकार का अभाव
नहीं है और जो हर प्रकार से पूर्ण है। भगवान् समस्त जीवात्माओं की आवश्यकताओं को पूरा

करते हैं। ये आवश्यकताएँ पृथ्वी से उत्पन्न होती हैं, अतः पृथ्वी ही पूर्ति का स्रोत हैं। जब शासक उत्तम होता है, तो इस स्रोत से जीवन की आवश्यकताएँ प्रचुरता से उत्पन्न होती हैं। किन्तु जब शासक योग्य नहीं रहता तो इनका अभाव रहता है। कामधुक् शब्द का यही महत्त्व है। श्रीमद्भागवत में अन्यत्र (१.१०.४) भी कहा गया है—*कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही*— “महाराज युधिष्ठिर के राज्य में बादल मनुष्य की आवश्यकतानुसार वर्षा करते थे और पृथ्वी मनुष्यों की आवश्यक वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में उत्पन्न करती थी।” हमें अनुभव है कि कुछ ऋतुओं में वर्षा प्रचुर उत्पादन करती है, तो कुछ में अभाव रहता है। पृथ्वी की उर्वरता पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं है, क्योंकि उस पर श्रीभगवान् का पूर्ण नियंत्रण है। अपनी आज्ञा से ईश्वर पृथ्वी से कम या अधिक उत्पन्न करवा सकता है। यदि कोई पवित्र राजा शास्त्रों के आदेशों के अनुसार पृथ्वी पर शासन करता है, तो नियमित वर्षा होती रहती है, जिससे सभी मनुष्यों के लिए प्रचुर उत्पादन होगा। तब किसी प्रकार के शोषण का प्रश्न ही नहीं उठेगा, क्योंकि सबों के पास प्रचुर अन्न होगा। तब काला-बाजारी तथा अन्य अपराध स्वयमेव बन्द हो जाएँगे। जब तक शासक में आध्यात्मिक योग्यताएँ नहीं होती, मात्र पृथ्वी पर शासन करने से मनुष्यों की समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं। उसे महाराज युधिष्ठिर, परीक्षित महाराज या श्री रामचन्द्र के समान होना चाहिए। तभी देश के समस्त निवासी नितान्त सुखी होंगे।

तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ।

सान्तानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु सन्ततिम् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसकी (चित्रकेतु की); भार्या—पत्नियों के; सहस्राणाम्—हजारों; सहस्राणि—हजार; दश—दस; अभवन्—थीं; सान्तानिकः—सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ; च—तथा; अपि—यद्यपि; नृपः—राजा; न—नहीं; लेभे—प्राप्त किया; तासु—उनसे; सन्ततिम्—पुत्र।

राजा चित्रकेतु के एक करोड़ पत्नियाँ थीं और यद्यपि वह सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ था, किन्तु उनसे उसे कोई सन्तान प्राप्त नहीं हुई। संयोगवश सभी पत्नियाँ बाँझ थीं।

रूपौदार्यवयोजन्मविद्वैश्वर्यश्रियादिभिः ।

सम्पन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिन्ता बन्ध्यापतेरभूत् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

रूप—सुन्दरता; औदार्य—उदारता; वयः—युवावस्था; जन्म—उच्चकुल में जन्म; विद्या—विद्या; ऐश्वर्य—ऐश्वर्य; श्रिय-
आदिभिः—सम्पत्ति आदि से; सम्पन्नस्य—युक्त; गुणैः—गुणों से; सर्वैः—समस्त; चिन्ता—चिन्ता; बन्ध्या-पतेः—अनेक
बाँझ पत्नियों के पति चित्रकेतु की; अभूत्—थी।

इन करोड़ पत्नियों का पति चित्रकेतु अत्यन्त रूपवान् उदार तथा तरुण था। वह उच्च कुल में उत्पन्न हुआ था, उसे पूर्ण शिक्षा प्राप्त हुई थी और वह सम्पत्तिवान् एवं ऐश्वर्यवान् था। फिर भी इन समस्त गुणों के होते हुए किन्तु कोई पुत्र न होने से वह अत्यन्त चिन्तायुक्त रहता था।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि राजा ने पहले एक विवाह किया। किन्तु उस से कोई सन्तान न हुई तब उसने दूसरा और फिर तीसरा, चौथा आदि कई विवाह किये, किन्तु किसी भी पत्नी से कोई पुत्र न हुआ। उच्चकुल में जन्म लेने एवं ऐश्वर्य, शिक्षा तथा रूप से सम्पन्न होते हुए भी वह अत्यन्त दुखी था क्योंकि इतनी सारी पत्नियां होने पर भी इसके कोई पुत्र नहीं थे। निश्चय ही उसका विषाद स्वाभाविक था। गृहस्थ जीवन का अभिप्राय यह नहीं है कि पत्नी तो हो किन्तु सन्तान न हो। चाणक्य पंडित का कथन है—*पुत्रहीनं गृहं शून्यम्*—यदि गृहस्थ पुरुष के पुत्र न हो तो घर मरुस्थल के समान होता है। राजा निश्चित रूप से अत्यन्त दुखी था, क्योंकि उसे कोई पुत्र नहीं हुआ और इसलिए उसने अनेक बार विवाह किये। क्षत्रियों को एक से अधिक पत्नी से विवाह करने की विशेष अनुमति है, इसलिए इस राजा ने ऐसा किया। इतने पर भी उसे कोई सन्तान न हुई।

न तस्य सम्पदः सर्वा महिष्यो वामलोचनाः ।

सार्वभौमस्य भूश्लेयमभवन्प्रीतिहेतवः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; तस्य—उसकी (चित्रकेतु की); सम्पदः—अपार ऐश्वर्य; सर्वाः—सभी; महिष्यः—रानियाँ; वाम-लोचनाः—अत्यन्त आकर्षक नेत्रों वाली; सार्व-भौमस्य—महाराज की; भूः—पृथ्वी; च—भी; इयम्—यह; अभवन्—थे; प्रीति-हेतवः—प्रसन्नता के कारण।

उनकी सभी रानियाँ सुमुखी एवं आकर्षक नेत्रों वाली थीं, फिर भी न तो उसका ऐश्वर्य तथा सैकड़ों-हजारों रानियाँ, न वे प्रदेश, जिनका वह सर्वोच्च स्वामी था, उसे प्रसन्न कर सकते थे।

तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः ।

लोकाननुचरन्नेतानुपागच्छद्यदृच्छया ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; एकदा—एक बार; तु—लेकिन; भवनम्—महल में; अङ्गिराः—अंगिरा; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; ऋषिः—साधु; लोकान्—लोकों में; अनुचरन्—चारों ओर घूमते हुए; एतान्—इन; उपागच्छत्—आये; यदृच्छया—अचानक।

एक बार समस्त ब्रह्माण्ड में विचरण करते हुए अंगिरा नामक शक्तिशाली ऋषि अकस्मात् अपनी शुभेच्छा से राजा चित्रकेतु के महल में पधारे।

तं पूजयित्वा विधिवत्प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ।

कृतातिथ्यमुपासीदत्सुखासीनं समाहितः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; पूजयित्वा—पूजा करके; विधि-वत्—उच्च अतिथियों के सत्कार के नियमों के अनुसार विधिपूर्वक; प्रत्युत्थान—सिंहासन से उठकर; अर्हण-आदिभिः—पूजा आदि के द्वारा; कृत-अतिथ्यम्—सत्कार किया जाकर; उपासीदत्—निकट आकर बैठ गया; सुख-आसीनम्—सुखपूर्वक विराजमान; समाहितः—मन तथा इन्द्रियों को वश में करते हुए।

चित्रकेतु तुरन्त ही अपने सिंहासन से उठकर खड़ा हो गया और उनकी अर्चना की। उसने जल तथा खाद्य सामग्री भेंट की और इस प्रकार अपने परम अतिथि के प्रति मेजवान का अपना कर्तव्य पूरा किया। जब अंगिरा ऋषि सुखपूर्वक आसन ग्रहण कर चुके तो राजा अपने मन तथा इन्द्रियों को संयमित करके ऋषि के चरणों के निकट भूमि पर बैठ गया।

महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ ।

प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

महा-ऋषिः—परम साधु; तम्—उस (राजा) के; उपासीनम्—निकट बैठकर; प्रश्रय-अवनतम्—विनयवश सिर झुकाकर; क्षितौ—पृथ्वी पर; प्रतिपूज्य—साधुवाद देते हुए; महाराज—हे राजा परीक्षित; समाभाष्य—सम्बोधित करके; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा ।

हे राजा परीक्षित! जब चित्रकेतु विनीत भाव से नत होकर ऋषि के चरण-कमलों के निकट बैठ गया तो ऋषि ने उसकी विनयशीलता तथा उनके आतिथ्य के लिए साधुवाद दिया और उसे निम्नलिखित शब्दों से सम्बोधित किया ।

अङ्गिरा उवाच

अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथात्मनः ।

यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान्राजा च सप्तभिः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

अङ्गिराः उवाच—ऋषि अंगिरा ने कहा; अपि—क्या; ते—तुमको; अनामयम्—स्वास्थ्य; स्वस्ति—कुशलता; प्रकृतीनाम्—अपनी राज्य-सामग्री का (पार्षद तथा सामग्री); तथा—और; आत्मनः—अपने शरीर, मन तथा आत्मा का; यथा—सदृश; प्रकृतिभिः—प्रकृति के तत्त्वों से; गुप्तः—आरक्षित; पुमान्—जीवित प्राणी; राजा—राजा; च—भी; सप्तभिः—सातसे ।

ऋषि अंगिरा ने कहा—हे राजन्! आशा है कि तुम अपने शरीर तथा मन और अपने राज्य-पार्षदों तथा सामग्री सहित कुशल से हो । जब प्रकृति के सातों गुण [सम्पूर्ण भौतिक शक्ति (माया), अहंकार तथा इन्द्रियतृप्ति के पाँचों पदार्थ] अपने-अपने क्रम में ठीक रहते हैं, तो भौतिक तत्त्वों के भीतर जीवात्मा सुखी रहता है । इन सात तत्त्वों के बिना कोई रह नहीं सकता । इसी प्रकार राजा सात तत्त्वों द्वारा सदा आरक्षित रहता है । ये तत्त्व हैं—उसका उपदेशक (स्वामी या गुरु), उसके मंत्री, उसका राज्य, उसका दुर्ग, उसका कोष, उसके राज्याधिकार तथा उसके मित्र ।

तात्पर्य : श्रीधर स्वामी ने भागवत की अपनी टीका में यह श्लोक उद्धृत किया है—

स्वाम्यमात्यौ जनपदा दुर्गद्रविणसंचयाः ।

दंडो मित्रं च तस्यैताः सप्त-प्रकृतयो मताः ॥

राजा अकेला नहीं होता। उसका गुरु या परम निर्देशक सर्वोपरि है। फिर उसके मंत्री, राज्य, दुर्ग, कोष, शान्ति की व्यवस्था और मित्र अथवा सहयोगी होते हैं। यदि इन सातों को सही ढंग से रखा जाये तो राजा सुखी रहता है। इसी प्रकार *भगवद्गीता* में बताया गया है कि जीवात्मा या आत्मा महत् तत्त्व अहंकार तथा पंच-तन्मात्रा अर्थात् इन्द्रियतृप्ति के पाँच पदार्थों के भौतिक आवरण के भीतर रहता है। जब ये सातों ढंग से रहते हैं, तो जीवात्मा सुखी रहता है। सामान्यतः जब राजा के पार्षद शान्त एवं आज्ञाकारी होते हैं, तो राजा सुखी रहता है। अतः अंगिरा ऋषि ने राजा के निजी स्वास्थ्य तथा उसके सात पार्षदों की कुशलता के सम्बन्ध में पूछा। जब हम अपने मित्र से यह पूछते हैं कि कुशल तो है, तो हम केवल उसी के बारे में अर्थात् व्यक्तिगत स्वयं नहीं जानना चाहते हैं, वरन् उसके परिवार, आय के साधन, उसके सहायकों अथवा सेवकों आदि के विषय में भी जानना चाहते हैं। जब ये सब कुशल से रहते हैं, तभी मनुष्य सुखी हो सकता है।

आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात् ।

राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाहिताधयः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

आत्मानम्—स्वयं; प्रकृतिषु—इन सात राजसी तत्त्वों के अन्तर्गत; अद्धा—प्रत्यक्षतः; निधाय—रखकर; श्रेयः—परम सुख; आप्नुयात्—प्राप्त कर सकता है; राज्ञा—राजा के द्वारा; तथा—उसी प्रकार, वैसे ही; प्रकृतयः—प्रकृतियाँ; नर-देव—हे राजन्; आहित-अधयः—सम्पत्ति तथा अन्य वस्तुएँ भेंट करके।

हे राजन्, हे मानवता के ईश! जब राजा अपने पार्षदों पर प्रत्यक्षतः आश्रित रहता है और उनके आदेशों का पालन करता है, तो वह सुखी रहता है। इसी प्रकार जब पार्षद राजा को भेंटें प्रदान करते हैं और उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं, तो वे भी सुखी रहते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में राजा तथा उसके आश्रितों के वास्तविक सुख का उल्लेख हुआ है। सर्वोपरि होने के कारण राजा को अपने आश्रितों को न केवल आज्ञाएँ देनी चाहिए, अपितु कभी-कभी उनके निर्देशों को भी मानना चाहिए। इसी प्रकार आश्रितों को चाहिए कि वे भी राजा पर निर्भर रहें। इस अन्योन्याश्रिता से प्रत्येक व्यक्ति सुखी होगा।

अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मन्त्रिणः ।
पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; दाराः—पत्नियाँ; प्रजा—नागरिक जन; अमात्याः—(तथा) सचिवगण; भृत्याः—सेवक; श्रेण्यः—
व्यापारीजन; अथ—तथा; मन्त्रिणः—मन्त्री (सलाहकार); पौराः—महल के वासी; जानपदाः—राज्यपाल; भूपाः—
भूमिधर; आत्म-जाः—पुत्र; वश-वर्तिनः—पूरी तरह तुम्हारे वश में।

हे राजन्! तुम्हारी पत्नियाँ, नागरिक, सचिव तथा सेवक एवं मसाले तथा तेल के
विक्रेता व्यापारी तुम्हारे वश में तो हैं? तुमने अपने मंत्रियों, महल के निवासियों
(पुरवासियों), अपने राज्यपालों, अपने पुत्रों तथा अन्य आश्रितों को अपने नियंत्रण में तो
कर रखा है?

तात्पर्य : स्वामी अथवा राजा एवं उसके आश्रितों को परस्पर निर्भर होना चाहिए। सहयोग से
वे दोनों सुखी रह सकते हैं।

यस्यात्मानुवशश्चेत्स्यात्सर्वे तद्दशगा इमे ।
लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

यस्य—जिसका; आत्मा—मन; अनुवशः—वश में; चेत्—यदि; स्यात्—हो; सर्वे—समस्त; तत्-वश-गाः—उसके
अधीन; इमे—ये; लोकाः—विभिन्न लोक; स-पालाः—पालकों या राज्यपालों सहित; यच्छन्ति—अर्पण करते हैं; सर्वे—
समस्त; बलिम्—भेंट; अतन्द्रिताः—आलस्य से मुक्त।

यदि राजा का मन अपने वश में रहता है, तो उसके समस्त पारिवारिक प्राणी एवं राज-
अधिकारी उसके अधीन रहते हैं। उसके प्रान्तपालक (राज्यपाल) समय पर अवरोध-रहित
कर प्रस्तुत करते हैं, छोटे-छोटे सेवकों की तो कोई बात ही नहीं है।

तात्पर्य : अंगिरा ऋषि ने राजा से पूछा कि उसका मन तो उसके वश में है? सुखी रहने के
लिए यह नितान्त अनिवार्य है।

आत्मनः प्रीयते नात्मा परतः स्वत एव वा ।

लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

आत्मनः—तुम स्वयं; प्रीयते—सन्तुष्ट हो; न—नहीं; आत्मा—मन; परतः—अन्य कारणों से; स्वतः—अपने कारण; एव—निस्सन्देह; वा—अथवा; लक्षये—मैं देख सकता हूँ; अलब्ध-कामम्—अपेक्षित लक्ष्य को न प्राप्त करके; त्वाम्—तुमको; चिन्तया—चिन्ता के कारण; शबलम्—पीला; मुखम्—मुख, चेहरा।

हे राजा चित्रकेतु! मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारा मन सन्तुष्ट नहीं है। ऐसा लगता है तुम्हें वांछित लक्ष्य प्राप्त नहीं हो पाया है। यह स्वतः तुम्हारे अपने कारण अथवा अन्य किसी कारण से ऐसा हुआ है? तुम्हारे पीले मुख से तुम्हारी गहरी चिन्ता झलकती है।

एवं विकल्पितो राजन्विदुषा मुनिनापि सः ।

प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; विकल्पितः—पूछे जाने पर; राजन्—हे राजा परीक्षित; विदुषा—परम विद्वान्; मुनिना—मुनि (दार्शनिक) के द्वारा; अपि—यद्यपि; सः—उस (राजा चित्रकेतु) ने; प्रश्रय-अवनतः—विनयवश झुककर; अभ्याह—उत्तर दिया; प्रजा-कामः—पुत्र की इच्छा से; ततः—तत्पश्चात्; मुनिम्—मुनि को।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा—हे राजा परीक्षित! यद्यपि महर्षि अंगिरा को सब कुछ ज्ञात था फिर भी उन्होंने राजा से इस प्रकार पूछा। अतः पुत्र के इच्छुक राजा चित्रकेतु अत्यन्त विनीत भाव से नीचे झुक गये और महर्षि से इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : चूँकि मुख मन का दर्पण है, अतः साधु पुरुष किसी भी व्यक्ति के मुख को देखकर ही मन की दशा जान लेते हैं। जब महर्षि अंगिरा ने राजा के पीले मुखमण्डल के सम्बन्ध में संकेत किया, तो राजा चित्रकेतु ने अपनी चिन्ता का कारण इस प्रकार कह सुनाया।

चित्रकेतुरुवाच

भगवन्किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः ।

योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरन्तः शरीरिषु ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

चित्रकेतुः उवाच—राजा चित्रकेतु ने उत्तर दिया; भगवन्—हे परम शक्तिशाली साधु; किम्—क्या; न—नहीं; विदितम्—ज्ञात है; तपः—तपस्या; ज्ञान—ज्ञान; समाधिभिः—तथा समाधि से; योगिनाम्—महान् योगियों या भक्तों द्वारा; ध्वस्त-पापानाम्—समस्त पापकर्मों से पूर्णतया विमुक्त; बहिः—बाहर से; अन्तः—भीतर से; शरीरिषु—बद्धजीवों में, जिनके भौतिक देह हैं।

राजा चित्रकेतु ने कहा—हे महाप्रभु अंगिरा! तपस्या, ज्ञान तथा दिव्य समाधि से आप पापमय जीवन के समस्त बन्धनों से मुक्त हैं; अतः आप सिद्ध योगी के रूप में हम जैसे बद्धजीवों के अन्दर और बाहर की प्रत्येक बात को जान सकते हैं।

तथापि पृच्छतो ब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिन्तितम् ।
भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तथापि—तो भी; पृच्छतः—पूछने पर; ब्रूयाम्—बोलने की आज्ञा दें; ब्रह्मन्—हे परम ब्राह्मण; आत्मनि—मन में; चिन्तितम्—चिन्ता; भवतः—आपकी; विदुषः—सब कुछ जानने वाले, सर्वज्ञ; च—तथा; अपि—यद्यपि; चोदितः—प्रेरित होकर; त्वत्—आपकी; अनुज्ञया—आज्ञा से।

हे परम आत्मन्! आप सब कुछ जानते हैं, तो भी आप मुझसे पूछ रहे हैं कि मैं चिन्ता से पूर्ण क्यों हूँ। अतः मैं आपकी आज्ञा के प्रत्युत्तर में कारण को प्रकट कर रहा हूँ।

लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसम्पदः ।
न नन्दयन्त्यप्रजं मां क्षुत्तृत्काममिवापरे ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

लोक-पालैः—बड़े-बड़े देवताओं द्वारा; अपि—भी; प्रार्थ्याः—लालायित; साम्राज्य—बृहद् राज्य; ऐश्वर्य—सांसारिक सम्पत्ति; सम्पदः—धन; न नन्दयन्ति—आनन्द नहीं प्रदान करते; अप्रजम्—पुत्र न होने से; माम्—मुझको; क्षुत्—भूख; तृत्—प्यास; कामम्—विषय; इव—सदृश; अपरे—अन्य भोग्य वस्तुएँ।

जिस प्रकार भूखा तथा प्यासा व्यक्ति फूल की मालाओं या चंदन-लेप जैसी बाह्य तृप्ति से संतुष्ट नहीं होता, उसी प्रकार पुत्र न होने से मैं अपने साम्राज्य, ऐश्वर्य या सम्पदा से, जिनके लिए बड़े-बड़े देवता भी लालायित रहते हैं, सन्तुष्ट नहीं हूँ।

ततः पाहि महाभाग पूर्वैः सह गतं तमः ।
यथा तरेम दुष्पारं प्रजया तद्विधेहि नः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

ततः—अतः, इस कारण से; पाहि—मेरी रक्षा कीजिये; महा-भाग—हे परम साधु; पूर्वैः सह—अपने पितरों समेत; गतम्—गया हुआ; तमः—अंधकार में; यथा—जिससे; तरेम—पार कर सकें; दुष्पारम्—पार करना अत्यन्त कठिन; प्रजया—पुत्र प्राप्ति करके; तत्—वह; विधेहि—कृपया करें; नः—हम सबों के लिए।

अतः हे परम साधु! मेरी तथा मेरे पितरों की रक्षा कीजिये (उबारिये), क्योंकि मेरे संतान न होने से वे नरक के अंधकार में धँसते जा रहे हैं। कृपया कुछ ऐसा करें जिससे मुझे पुत्र प्राप्त हो, जो हम सबों को नारकीय दशाओं से उबार सके।

तात्पर्य : वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य मात्र पुत्र-प्राप्ति के लिए ही विवाह करता है, जिससे वह अपने पितरों को पिंडदान कर सके। राजा चित्रकेतु के लिए पुत्र-प्राप्ति इसलिए आवश्यक थी जिससे वह स्वयं तथा उसके पितृगण नरक से उबर सकें। उसे एकमात्र इसी की चिन्ता थी कि वह स्वयं तथा उसके पूर्वज अगले जन्मों में किस प्रकार पिंड प्राप्त कर सकें। इसलिए उसने अंगिरा ऋषि से प्रार्थना की कि वे कुछ ऐसा करने की कृपा करें जिससे उसे पुत्र-प्राप्ति हो सके।

श्रीशुक उवाच

इत्यर्थितः स भगवान्कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ।

श्रपयित्वा चरुं त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्विभुः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; अर्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; सः—उस (अंगिरा) ने; भगवान्—परम शक्तिमान; कृपालुः—अत्यन्त दयालु; ब्रह्मणः—भगवान् ब्रह्मा का; सुतः—पुत्र (भगवान् ब्रह्मा के मन से उत्पन्न); श्रपयित्वा—पका कर; चरुम्—खीर का विशिष्ट पिण्ड, चरु; त्वाष्ट्रम्—त्वष्टा नामक देवता के लिए; त्वष्टारम्—त्वष्टा की; अयजत्—अर्चना की; विभुः—परम साधु।

महाराज चित्रकेतु द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान् ब्रह्मा के मन से उत्पन्न (मानसपुत्र) अंगिरा ऋषि राजा के प्रति अत्यन्त दयालु हो उठे। अपने अत्यन्त शक्तिशाली व्यक्तित्व के कारण ऋषि ने त्वष्टा नामक देवता को खीर का पिण्डदान करके यज्ञ सम्पन्न किया।

ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत ।

नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदादिद्वजः ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

ज्येष्ठा—ज्येष्ठ, सबसे बड़ी; श्रेष्ठा—परम गुणवती; च—तथा; या—जो; राज्ञः—राजा की; महिषीणाम्—समस्त रानियों में; च—भी; भारत—हे महाराज परीक्षित; नाम्ना—नामक; कृतद्युतिः—कृतद्युति; तस्यै—उसको; यज्ञ—यज्ञ का; उच्छिष्टम्—अवशेष प्रसाद; अदात्—प्रदान किया; द्विजः—महान् ऋषि (अंगिरा) ने।

हे महाराज परीक्षित! अंगिरा ऋषि ने यज्ञ के अवशेष प्रसाद को चित्रकेतु की लाखों रानियों में सबसे बड़ी तथा परम गुणवती रानी को प्रदान किया, जिसका नाम कृतद्युति था।

अथाह नृपतिं राजन्भवितैकस्तवात्मजः ।

हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; आह—कहा; नृपतिम्—राजा को; राजन्—हे राजा चित्रकेतु; भविता—होगा; एकः—एक; तव—तुम्हारे; आत्मजः—पुत्र; हर्ष-शोक—प्रसन्नता तथा दुख; प्रदः—प्रदान करने वाला; तुभ्यम्—तुमको; इति—इस प्रकार; ब्रह्म-सुतः—भगवान् ब्रह्मा के पुत्र, अंगिरा ऋषि; ययौ—चले गये।

तत्पश्चात् ऋषि ने राजा से कहा—“हे राजन्! अब तुम्हारे एक पुत्र होगा जो हर्ष तथा शोक दोनों का कारण बनेगा।” ऐसा कहकर चित्रकेतु के उत्तर की प्रतीक्षा न करके ऋषि चले गये।

तात्पर्य : ‘हर्ष’ शब्द का अर्थ है प्रसन्नता और ‘शोक’ का अर्थ है दुख। जब राजा को ज्ञात हुआ कि उसके पुत्र उत्पन्न होगा तो वह अत्यधिक प्रसन्न हो गया। अत्यधिक प्रसन्नता के मारे वह अंगिरा ऋषि के कथन का वास्तविक अर्थ नहीं समझ पाया। उसने यह समझा कि भावी पुत्र के जन्म से निश्चय ही हर्ष होगा, किन्तु उसका एकमात्र पुत्र होने से सम्पत्ति और साम्राज्य के गर्व से फूल कर सम्भव है कि वह पिता का आज्ञाकारी न बने; इस तरह राजा यह सोच कर संतुष्ट हुआ कि पहले पुत्र तो उत्पन्न हो। इससे क्या अंतर पड़ता है यदि वह आज्ञाकारी नहीं होता है। बंगाल में कहावत है कि मामा न होने की अपेक्षा अंधा मामा ही भला है। राजा को यह तर्क भा गया कि पुत्र न होने की अपेक्षा अवज्ञाकारी पुत्र होना अच्छा है। परम साधु चाणक्य पंडित का कथन है—

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् धार्मिकः ।

काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुः पीडैव केवलम् ॥

“ऐसे पुत्र से क्या लाभ, जो न तो विद्वान है न भक्त? ऐसा पुत्र उस अंधी रोगग्रस्त आँख के

समान है, जो हमेशा दुख देती रहती है।” इतने पर भी भौतिक जगत कितना कलुषित हो चुका कि मनुष्य पुत्र की कामना करता है, भले ही वह बेकार क्यों न हो। राजा चित्रकेतु की कथा इसी विचार-धारा का प्रतीक थी।

सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् ।

गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाग्नेरिवात्मजम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

सा—वह (रानी); अपि—भी; तत्—प्राशनात्—यज्ञ के अवशेष प्रसाद को खाने से; एव—निस्सन्देह; चित्रकेतोः—चित्रकेतु से; अधारयत्—धारण किया; गर्भम्—गर्भ; कृतद्युतिः—रानी कृतद्युति ने; देवी—देवी; कृत्तिका—कृत्तिका; अग्नेः—अग्नि से; इव—के समान; आत्म-जम्—पुत्र।

अंगिरा द्वारा सम्पन्न यज्ञ के अवशेष को खाकर कृतद्युति ने चित्रकेतु के वीर्य से उस प्रकार गर्भ धारण किया जिस प्रकार कृत्तिकादेवी ने अग्नि से भगवान् शिव का वीर्य प्राप्त करके स्कन्द (कार्तिकेय) नामक पुत्र को गर्भ में धारण किया था।

तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ।

ववृधे शूरसेनेशतेजसा शनकैर्नृप ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसका; अनुदिनम्—दिनोंदिन; गर्भः—गर्भ; शुक्ल-पक्षे—शुक्लपक्ष में (चन्द्रमा बढ़ता जाता है); इव—सदृश; उडुपः—चन्द्रमा; ववृधे—क्रमशः बढ़ने लगा; शूरसेन-ईश—शूरसेन के राजा; तेजसा—वीर्य से; शनकैः—थोड़ा-थोड़ा करके, क्रमशः; नृप—हे राजा परीक्षित!.

हे राजा परीक्षित! शूरसेन के राजा महाराज चित्रकेतु के वीर्य से कृतद्युति का गर्भ उसी प्रकार क्रमशः बढ़ने लगा, जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा बढ़ता जाता है।

अथ काल उपावृत्ते कुमारः समजायत ।

जनयन्शूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; काले उपावृत्ते—कालक्रम से, समय आने पर; कुमारः—पुत्र ने; समजायत—जन्म लिया; जनयन्—जन्म होने का; शूरसेनानाम्—शूरसेन देश के निवासियों का; शृण्वताम्—सुनकर; परमाम्—अत्यधिक; मुदम्—हर्ष आनन्द।

तदनन्तर समय आने पर राजा के पुत्र उत्पन्न हुआ। इस समाचार को सुनकर शूरसेन देश

के समस्त वासी अत्यधिक प्रसन्न हुए।

हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलङ्कृतः ।

वाचयित्वाशिषो विप्रैः कारयामास जातकम् ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

हृष्टः—अत्यधिक प्रसन्न; राजा—राजा चित्रकेतु; कुमारस्य—नवजात पुत्र का; स्नातः—नहाकर; शुचिः—पवित्र होकर; अलङ्कृतः—आभूषणों से सुसज्जित होकर; वाचयित्वा—स्वस्तिवाचन कराकर; आशिषः—आशीर्वाद के शब्द; विप्रैः—विद्वान् ब्राह्मणों से; कारयाम् आस—सम्पन्न कराया; जातकम्—जातकर्म संस्कार.

राजा चित्रकेतु विशेष रूप से प्रसन्न थे। स्नान करके, पवित्र होकर तथा आभूषणों से सज्जित होकर उन्होंने विद्वान् ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन और आशीर्वाद लेकर पुत्र का जातकर्म-संस्कार करवाया।

तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च ।

ग्रामान्हयान्गजान्प्रादाद्धेनूनामर्बुदानि षट् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

तेभ्यः—उन (ब्राह्मणों) को; हिरण्यम्—सोना; रजतम्—चाँदी; वासांसि—वस्त्र; आभरणानि—गहने, आभूषण; च—तथा; ग्रामान्—अनेक गाँव; हयान्—घोड़े; गजान्—हाथी; प्रादात्—दान में दिया; धेनूनाम्—गायों का; अर्बुदानि—दस करोड़; षट्—छह।

राजा ने इस अनुष्ठान में भाग लेने वाले समस्त ब्राह्मणों को दान में सोना, चाँदी, वस्त्र, आभूषण, गाँव, घोड़े, हाथी और साठ करोड़ गौएँ दीं।

ववर्ष कामानन्येषां पर्जन्य इव देहिनाम् ।

धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य महामनाः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

ववर्ष—वर्षा की, दान में दिया; कामान्—मुँहमाँगी वस्तुएँ; अन्येषाम्—अन्यों की; पर्जन्यः—बादल; इव—सदृश; देहिनाम्—समस्त जीवात्माओं का; धन्यम्—ऐश्वर्य वृद्धि की आकांक्षा सहित; यशस्यम्—यश में वृद्धि; आयुष्यम्—तथा आयुवृद्धि; कुमारस्य—नवजात शिशु की; महा-मनाः—उदारचेता राजा चित्रकेतु ने।

जिस प्रकार बादल बिना पक्षपात के पृथ्वी पर वर्षा करता है, उसी तरह उदारचेता राजा चित्रकेतु ने अपने पुत्र के यश, ऐश्वर्य तथा आयु की वृद्धि के लिए सबों को मुँहमाँगी वस्तुएँ

दीं ।

कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ।
यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्धत ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

कृच्छ्र—कठिनाई से; लब्धे—प्राप्त; अथ—तदनन्तर; राज-ऋषेः—पवित्र राजा चित्रकेतु का; तनये—पुत्र के लिए; अनुदिनम्—प्रतिदिन; पितुः—पिता का; यथा—जिस प्रकार; निःस्वस्य—निर्धन पुरुष का; कृच्छ्र-आप्ते—अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त; धने—धन के लिए; स्नेहः—स्नेह, प्यार; अन्ववर्धत—बढ़ता गया ।

जिस प्रकार किसी निर्धन व्यक्ति को बड़ी कठिनाई से कुछ धन मिलता है, तो उसमें प्रतिदिन उसकी आसक्ति बढ़ती जाती है, इसी प्रकार जब राजा चित्रकेतु को अत्यन्त कठिनाई से पुत्र की प्राप्ति हुई तो दिन प्रति दिन पुत्र के प्रति उसका स्नेह बढ़ता गया ।

मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ।
कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

मातुः—माता का; तु—भी; अतितराम्—अत्यधिक; पुत्रे—पुत्र के लिए; स्नेहः—वत्सलता; मोह—अविद्यावश; समुद्भवः—उत्पन्न; कृतद्युतेः—कृतद्युति की; सपत्नीनाम्—सौतों का; प्रजा-काम—पुत्रेच्छा का; ज्वरः—ताप, ज्वर; अभवत्—था ।

पिता की ही भाँति माँ का भी आकर्षण एवं स्नेह पुत्र के प्रति बढ़ता गया । कृतद्युति के पुत्र को देख देख कर राजा की अन्य पत्नियाँ पुत्र की कामना से अत्यधिक क्षुब्ध रहने लगीं, मानो उन्हें उच्च ज्वर हो ।

चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ।
न तथान्येषु सञ्जज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

चित्रकेतोः—राजा चित्रकेतु का; अतिप्रीतिः—अत्यधिक आकर्षण; यथा—जिस प्रकार; दारे—अपनी पत्नी में; प्रजा-वति—जिसने पुत्र को जन्म दिया हो, पुत्रवती; न—नहीं; तथा—उसी प्रकार; अन्येषु—अन्यों का; सञ्जज्ञे—उठा, उत्पन्न हुआ; बालम्—पुत्र को; लालयतः—लाड़-प्यार करते हुए; अन्वहम्—लगातार ।

ज्यों-ज्यों राजा चित्रकेतु अपने पुत्र का बड़ी सावधानी से लाड़-प्यार करने लगे त्यों-त्यों

रानी कृतद्युति के प्रति भी उनका प्रेम प्रगाढ़ होता गया और पुत्रहीन अन्य रानियों के प्रति उनका प्रेम क्रमशः घटने लगा ।

ताः पर्यतप्यन्नात्मानं गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया ।
आनपत्येन दुःखेन राज्ञश्चानादरेण च ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

ताः—वे (पुत्रहीन रानियाँ); पर्यतप्यन्—पश्चात्ताप करने लगीं; आत्मानम्—अपने आपको; गर्हयन्त्यः—धिक्कारती हुईं; अभ्यसूयया—डाह से; आनपत्येन—पुत्रहीन होने के कारण; दुःखेन—दुख से; राज्ञः—राजा की; च—भी; अनादरेण—उपेक्षा के कारण; च—भी ।

अन्य रानियाँ निपूती होने के कारण अत्यन्त अप्रसन्न थीं । अपने प्रति राजा की उपेक्षा से वे डाहवश अपने आपको धिक्कारने और पश्चात्ताप करने लगीं ।

धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसम्पताम् ।
सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

धिक्—धिक्कार है; अप्रजाम्—पुत्रहीना; स्त्रियम्—स्त्री को; पापाम्—पाप कर्मों से पूर्ण; पत्युः—पति के द्वारा; च—भी; अ-गृह-सम्पताम्—जिसका घर में अनादर हो, अनादृत; सु-प्रजाभिः—पुत्रवती; सपत्नीभिः—सौतों के द्वारा; दासीम्—दासी, नौकरानी; इव—के समान; तिरस्कृताम्—तिरस्कृत, अनादृत ।

जिस पत्नी के पुत्र नहीं होते वह घर में अपने पति द्वारा उपेक्षित रहती है और सौतों द्वारा दासी के समान अनादृत होती है । निश्चय ही ऐसी स्त्री अपने पापी जीवन के कारण सब तरह से धिक्कारी जाती है ।

तात्पर्य : जैसाकि चाणक्य पंडित ने कहा है—

माता यस्य गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी ।

अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥

“जिस मनुष्य के घर में माता न हो, जिसकी पत्नी मृदुभाषी न हो उसे चाहिए कि वह जंगल में चला जाये । ऐसे मनुष्य के लिए घर में रहना तथा जंगल में रहना एकसमान है ।” इसी प्रकार जिस स्त्री को पुत्र न हो और जिसका पति द्वार ध्यान न दिया जाता हो तथा जिसकी सौतों उसके

साथ नौकरानी जैसा बर्ताव करके उसकी उपेक्षा करती हों, उसके लिए घर में रहने की अपेक्षा जंगल में जाकर रहना श्रेयस्कर है ।

दासीनां को नु सन्तापः स्वामिनः परिचर्यया ।

अभीक्षणं लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

दासीनाम्—दासियों का; कः—क्या; नु—निस्सन्देह; सन्तापः—पश्चात्ताप, शोक; स्वामिनः—स्वामी की; परिचर्यया—सेवा करके; अभीक्षणम्—निरन्तर; लब्ध-मानानाम्—सम्मानित; दास्याः—दासी का; दासी इव—दासी के समान; दुर्भगाः—अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण, हतभाग्या ।

यहाँ तक कि जो दासियाँ अपने पति की निरन्तर सेवा करती हैं, वे भी अपने पति का सम्मान पाती रहती हैं, अतः उनको किसी बात के लिए पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता । किन्तु हमारी स्थिति तो दासी की दासियों के समान है, अतः हम सर्वाधिक हतभाग्या हैं ।

एवं सन्दह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसम्पदा ।

राज्ञोऽसम्मतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सन्दह्यमानानाम्—शोक से निरन्तर जलती रहने वाली रानियों का; सपत्न्याः—कृतद्युति की सौतों का; पुत्र-सम्पदा—पुत्र रूपी सम्पत्ति के कारण; राज्ञः—राजा के द्वारा; असम्मत-वृत्तीनाम्—अधिक पक्षपात न किये जाने से; विद्वेषः—ईर्ष्या; बलवान्—प्रबल शक्तिशाली; अभूत्—हो गया ।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा—अपने पति द्वारा उपेक्षित होने तथा कृतद्युति की गोद भरी हुई देखकर, सभी सौतों द्वेष से अधिकाधिक जलने लगीं ।

विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ।

गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

विद्वेष-नष्ट-मतयः—द्वेष के कारण बुद्धि नष्ट हो जाने से; स्त्रियः—स्त्रियाँ; दारुण-चेतसः—कठोर हृदय वाली; गरम्—विष; ददुः—पिला दिया; कुमाराय—बालक को; दुर्मर्षाः—चिढ़कर; नृपतिम्—राजा के; प्रति—प्रति ।

द्वेष बढ़ जाने से रानियों की मति मारी गई । अत्यधिक कठोर हृदय होने तथा राजा की उपेक्षा को न सह सकने के कारण उन्होंने अन्त में बालक को विष खिला दिया ।

कृतघृतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत् ।

सुप्त एवेति सञ्चिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरद्गृहे ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

कृतघृतिः—रानी कृतघृति; अजानन्ती—न जानती हुई; सपत्नीनाम्—अपनी सौतों के; अघम्—पाप-कृत्य; महत्—महान्, घोर; सुप्तः—सोया हुआ; एव—निस्सन्देह; इति—इस प्रकार; सञ्चिन्त्य—सोचकर; निरीक्ष्य—देखकर; व्यचरत्—घूमती रही; गृहे—घर में।

अपनी सौतों द्वारा विष दिये जाने की घटना को न जानती हुई रानी कृतघृति यह सोचकर कि उसका पुत्र गहरी निद्रा में सो रहा है घर में इधर-उधर विचरती रही। उसे पता न चल पाया कि वह मर चुका है।

शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ।

पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

शयानम्—सोता हुआ; सु-चिरम्—दीर्घकाल से; बालम्—पुत्र को; उपधार्य—सोचकर; मनीषिणी—अत्यन्त बुद्धिमान, बुद्धिमती; पुत्रम्—पुत्र; आनय—ले आओ; मे—मेरे पास; भद्रे—हे सखी या कल्याणी; इति—इस प्रकार; धात्रीम्—धाय को; अचोदयत्—आज्ञा दी।

यह सोचकर कि उसका पुत्र बड़ी देर से सो रहा है—उस अत्यन्त बुद्धिमान रानी कृतघृति ने धाय को आज्ञा दी, “हे सखी! मेरे पुत्र को यहाँ ले आओ।”

सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वा चोत्तारलोचनम् ।

प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हतास्मीत्यपतद्भुवि ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

सा—वह (दासी); शयानम्—सोते हुए; उपव्रज्य—के पास जाकर; दृष्ट्वा—देखकर; च—भी; उत्तार-लोचनम्—ऊपर उलटी हुई आँखें (जैसे मृत शरीर की होती हैं); प्राण-इन्द्रिय-आत्मभिः—प्राण, इन्द्रियों तथा मन से; त्यक्तम्—छोड़ा हुआ; हता अस्मि—मैं मरी, मैं मारी गई; इति—इस प्रकार; अपतत्—गिर पड़ी; भुवि—पृथ्वी पर।

जब धाय उस सोते हुए बच्चे के पास पहुँची तो उसने देखा कि उसकी आँखें ऊपर की ओर उलट गई हैं, उसके शरीर में प्राण का कोई संचार नहीं है और उसकी समस्त इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो गई हैं। अतः वह समझ गई कि बालक मर चुका है। यह देखकर वह तुरन्त

चिल्ला उठी, 'हाय मैं मारी गई' और पृथ्वी पर गिर पड़ी।

तस्यास्तदाकर्ण्य भृशातुरं स्वरं
घ्नन्त्याः कराभ्यामु उच्चकैरपि ।
प्रविश्य राज्ञी त्वरयात्मजान्तिकं
ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उस (दासी) का; तदा—उस समय; आकर्ण्य—सुनकर; भृश-आतुरम्—अत्यन्त कातर एवं क्षुब्ध; स्वरम्—स्वर, आवाज; घ्नन्त्याः—पीट पीटकर; कराभ्याम्—दोनों हाथों से; उरः—छाती; उच्चकैः—तेजी से, जोर जोर से; अपि—भी; प्रविश्य—घुस कर; राज्ञी—रानी; त्वरया—जल्दी जल्दी; आत्मज-अन्तिकम्—अपने पुत्र के निकट; ददर्श—देखा; बालम्—पुत्र को; सहसा—अकस्मात्; मृतम्—मृत, मरा हुआ; सुतम्—पुत्र को।

अत्यन्त विक्षुब्ध होकर वह धाय अपने दोनों हाथों से अपनी छाती पीटने लगी और आर्तस्वर में जोर-जोर से चिल्लाने लगी। उसकी तेज आवाज सुनकर रानी तुरन्त आ गई और जब वह अपने पुत्र के पास पहुँची, तो देखा कि वह सहसा ही मर चुका है।

पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा ।
मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहाम्बरा ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

पपात—गिर पड़ी; भूमौ—पृथ्वी पर; परिवृद्धया—अत्यधिक; शुचा—शोक के कारण; मुमोह—मूर्च्छित हो गई; विभ्रष्ट—बिखरे हुए; शिरोरुह—बाल, केश; अम्बरा—तथा वस्त्र।

अगाध शोक के कारण रानी मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर ऐसे गिर पड़ी कि उस के बाल तथा वस्त्र बिखर गये ।

ततो नृपान्तःपुरवर्तिनो जना
नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ।
आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखितास्
ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; नृप—हे राजा; अन्तःपुर-वर्तिनः—रनिवास के सभी वासी; जनाः—सभी व्यक्ति; नराः—पुरुष; च—तथा; नार्यः—स्त्रियाँ; च—भी; निशम्य—सुनकर; रोदनम्—रोना; आगत्य—आकर; तुल्य-व्यसनाः—समान रूप से

संतप्त होकर; सु-दुःखिता:—अत्यधिक विलखती हुई; ता:—वे; च—तथा; व्यलीकम्—झूठमूठ, ढोंग करके; रुरुदु:—रोने लगीं; कृत-आगस:—अपराध करने (विष देने) वाली ।

हे राजा परीक्षित! रानी का जोर-जोर से विलखना सुनकर, रनिवास के सभी स्त्री-पुरुष आ पहुँचे। समान रूप से संतप्त होने के कारण रोने लगे। जिन रानियों ने विष दिया था, अपने अपराध को भलीभाँति जानती हुई, वे भी झूठमूठ रोने का ढोंग करने लगीं।

श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं
 विनष्टदृष्टिः प्रपतन्स्खलन्पथि ।
 स्नेहानुबन्धैधितया शुचा भृशं
 विमूर्च्छितोऽनुप्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥ ५० ॥
 पपात बालस्य स पादमूले
 मृतस्य विस्त्रस्तशिरोरुहाम्बरः ।
 दीर्घं श्वसन्बाष्पकलोपरोधतो
 निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; मृतम्—मरा हुआ; पुत्रम्—पुत्र को; अलक्षित-अन्तकम्—मृत्यु का कारण न ज्ञात होने से; विनष्ट-दृष्टिः—ठीक से देख न सकने से; प्रपतन्—लगातार गिरते पड़ते; स्खलन्—लुढ़कते हुए; पथि—मार्ग पर; स्नेह-अनुबन्ध—स्नेह के कारण; एधितया—अत्यधिक बढ़े हुए; शुचा—शोक से; भृशम्—अत्यधिक; विमूर्च्छितः—मूर्च्छित होकर; अनुप्रकृतिः—अपने मंत्रियों तथा अन्य अधिकारियों के साथ; द्विजैः—विद्वान् ब्राह्मणों से; वृतः—घिरे हुए; पपात—गिर पड़ा; बालस्य—लड़के के; सः—वह (राजा); पाद-मूले—पाँवों पर; मृतस्य—मृत शरीर के; विस्त्रस्त—बिखरे हुए; शिरोरुह—बाल; अम्बरः—(तथा) वस्त्र; दीर्घम्—लम्बी; श्वसन्—श्वास; बाष्प-कला-उपरोधतः—अश्रुपूरित होकर चिल्लाने से; निरुद्ध-कण्ठः—रूँधी हुई वाणी से; न—नहीं; शशाक—समर्थ था; भाषितुम्—बोलने में।

जब राजा चित्रकेतु ने सुना कि न जाने कैसे उसका पुत्र मर गया है, तो वह प्रायः अन्धासा हो गया। पुत्र के प्रति अगाध स्नेह के कारण उसका विलाप जलती हुई अग्नि के समान बढ़ता गया और रास्ते भर वह भूमि पर लगातार गिरता-पड़ता तथा लुढ़कता हुआ उस मृत बालक को देखने गया। अपने मंत्रियों तथा अन्य अधिकारियों एवं विद्वान् ब्राह्मणों से घिरा हुआ वह राजा वहाँ पहुँचा और उस बालक के चरणों पर अचेत होकर गिर पड़ा। उसके बाल तथा वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। जब दीर्घ श्वास लेते हुए राजा को होश आया तो उसके नेत्र आसुओं से भरे हुए थे और वह बोल नहीं पा रहा था।

पतिं निरीक्ष्योरुशुचार्पितं तदा
 मृतं च बालं सुतमेकसन्ततिम् ।
 जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्भुजं
 सती दधाना विललाप चित्रधा ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

पतिम्—पति को; निरीक्ष्य—देखकर; उरु—अत्यधिक; शुच—शोक से; अर्पितम्—पीड़ित; तदा—उस समय; मृतम्—मृत; च—तथा; बालम्—बालक को; सुतम्—पुत्र; एक-सन्ततिम्—परिवार के एकलौते पुत्र को; जनस्य—वहाँ पर एकत्रित समस्त पुरुषों का; राज्ञी—रानी; प्रकृतेः च—तथा अधिकारियों और मंत्रियों का; हृत्-रुजम्—हृदय की पीड़ा; सती दधाना—बढ़ती हुई; विललाप—विलाप करने लगी; चित्रधा—अनेक प्रकार से।

जब रानी ने अपने पति राजा चित्रकेतु को अत्यधिक शोकाकुल और अपने एकलौते पुत्र को मरा हुआ देखा तो वह अनेक प्रकार से शोक प्रकट करने लगी। इससे रनिवास के समस्त वासियों, मंत्रियों तथा समस्त ब्राह्मणों के हृदय की व्यथा बढ़ गई।

स्तनद्वयं कुङ्कुमपङ्कमण्डितं
 निषिञ्चती साञ्जनबाष्पबिन्दुभिः ।
 विकीर्य केशान्विगलत्स्रजः सुतं
 शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम् ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

स्तन-द्वयम्—दोनों स्तन; कुङ्कुम—कुंकुम चूर्ण से (जिसे स्त्रियाँ अपने स्तनों पर मलती हैं); पङ्क—अंजन; मण्डितम्—सुशोभित; निषिञ्चती—भिगोती हुई; स-अञ्जन—आँख के काजल से मिलकर; बाष्प—आँसुओं के; बिन्दुभिः—बूँदों से; विकीर्य—बिखर कर; केशान्—बाल; विगलत्—गिर रहा था; स्रजः—जिस पर पुष्प हार; सुतम्—अपने पुत्र के लिए; शुशोच—विलाप करने लगी; चित्रम्—भाँति-भाँति से; कुररी इव—कुररी पक्षी की तरह; सु-स्वरम्—अत्यन्त मधुर स्वर में।

रानी के सिर को सुशोभित करने वाली फूलों की माला गिर पड़ी और उसके बाल बिखर गये। उसके आँसुओं से नेत्रों में लगा अंजन धुल गया और कुंकुम चूर्ण से लेपित उसके स्तन भीग गये। पुत्र की मृत्यु पर शोक करती हुई उस रानी का दारुण विलाप कुररी पक्षी के आर्त स्वर की तरह लग रहा था।

अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो

यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ।
 परे नु जीवत्यपरस्य या मृति-
 विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

अहो—ओह (शोक में); विधातः—हे विधाता, ईश्वर; त्वम्—तुम (तू); अतीव—अत्यन्त; बालिशः—मूर्ख; यः—जो;
 तु—निस्सन्देह; आत्म-सृष्टि—अपनी स्वयं बनाई हुई सृष्टि के; अप्रतिरूपम्—प्रतिकूल; ईहसे—कार्य करते तथा इच्छा
 करते हैं; परे—पिता या अन्य बड़ा; नु—निस्सन्देह; जीवति—जीवित रहता है; अपरस्य—बाद में जन्म लेने वाले का;
 या—जो; मृतिः—मृत्यु; विपर्ययः—विपरीत; चेत्—यदि; त्वम्—तुम; असि—हो; ध्रुवः—निस्सन्देह; परः—वैरी, शत्रु।

हे विधाता, हे सृष्टिकर्ता! तू निश्चय ही अपने सृष्टि-कार्य में अनुभव-हीन है क्योंकि पिता
 के रहते हुए तूने उसके पुत्र की मृत्यु होने दी और इस तरह से अपनी ही सृष्टि के नियमों के
 विपरीत कार्य किया है। यदि तू नियमभंग करने पर ही तुला है, तो तू निश्चय ही समस्त
 जीवात्माओं का शत्रु है और निर्दयी है।

तात्पर्य : जब बद्धजीव की पराजय होती है, तो वह इसी प्रकार से विधाता को धिक्कारता है।
 कभी वह श्रीभगवान् पर कुटिल होने का दोषारोपण करता है क्योंकि कुछ व्यक्ति सुखी हैं और
 कुछ नहीं। यहाँ पर रानी परमेश्वर को अपने पुत्र की मृत्यु के लिए दोष देती है। सृष्टि के
 नियमानुसार पिता को पहले मरना चाहिए, तब पुत्र को। यदि परमेश्वर अपनी सनक से इन नियमों
 को बदल देता है, तो उसे दयालु नहीं माना जा सकता, वरन् उसे मनुष्यों का शत्रु मानना चाहिये।
 वास्तव में विधाता नहीं, वरन् बद्धजीव ही अनुभवहीन (मूर्ख) है। उसे इसका ज्ञान नहीं है कि
 सकाम कर्म के सूक्ष्म नियम किस प्रकार कार्य करते हैं। वह इनको जाने बिना अज्ञानतावश पूर्ण
 पुरुषोत्तम भगवान् की आलोचना करता है।

न हि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः
 शरीरिणामस्तु तदात्मकर्मभिः ।
 यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये
 स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; हि—निस्सन्देह; क्रमः—तिथिक्रम; चेत्—यदि; इह—इस भौतिक जगत में; मृत्यु—मृत्यु; जन्मनोः—तथा जन्म
 का; शरीरिणाम्—बद्धजावों का जिन्होंने देह धारण करना स्वीकार किया है; अस्तु—हो; तत्—वह; आत्म-कर्मभिः—

अपने अपने कर्मों के फलों के द्वारा; यः—जो; स्नेह-पाशः—स्नेह बन्धन; निज-सर्ग—अपनी सृष्टि; वृद्धये—बढ़ाने के लिए; स्वयम्—अपने आप; कृतः—बनाई हुई; ते—तुम्हारे द्वारा; तम्—उसे; इमम्—यह; विवृशसि—तुम काट रहे हो।

हे ईश्वर! आप यह कह सकते हैं कि ऐसा कोई नियम नहीं है कि पुत्र के जीवनकाल में ही पिता की मृत्यु हो और पिता के जीवन काल में ही पुत्र उत्पन्न हो, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार जीता और मरता है। फिर भी, यदि कर्म इतना प्रबल है कि जन्म तथा मृत्यु उसी पर निर्भर करते हों तो फिर नियन्ता या ईश्वर की आवश्यकता नहीं है? पुनः यदि तू कहे कि नियन्ता की आवश्यकता इसलिए है, क्योंकि माया में कार्य करने की शक्ति नहीं होती, तो कोई यह भी तो कह सकता है कि यदि कर्म के द्वारा तेरे बनाये हुए स्नेह-बंधन टूटते हैं, तो कोई भी संतान को स्नेहपूर्वक नहीं पालेगा वरन् सभी लोग अपनी संतानों की निर्दयता से उपेक्षा करने लगेंगे। चूँकि तूने स्नेह के उन बंधनों को काटा है, जिसके वशीभूत होकर माता-पिता अपनी सन्तान का पालन-पोषण करने के लिए विवश हो जाते हैं, इसलिए तू अनुभवहीन एवं बुद्धिहीन प्रतीत होता है।

तात्पर्य : जैसाकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया है—*कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्ति-भाजाम्*—“जिसने कृष्ण-भक्ति ग्रहण कर रखी है, उसे कर्म फल प्रभावित नहीं कर पाते।” इस श्लोक में ‘कर्म’ पर अत्यधिक बल दिया गया है, जो कर्म-मीमांसा-दर्शन पर आधारित है। इस दर्शन के अनुसार मनुष्य को अपने कर्म के अनुसार कार्य करना चाहिए और परम नियन्ता कर्म का फल अवश्य देगा। परमेश्वर द्वारा नियंत्रित होने वाले कर्म के सूक्ष्म नियमों को सामान्य बद्धजीव नहीं समझ सकता। इसलिए कृष्ण का कथन है कि जो यह समझ सकता है कि वे किस प्रकार कार्य करते हैं और इन सूक्ष्म नियमों से प्रत्येक वस्तु पर नियंत्रण रखते हैं वह उनके अनुग्रह से तुरन्त मुक्त हो जाता है। यही ब्रह्म-संहिता का कथन है (*कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्ति-भाजाम्*)। मनुष्य को चाहिए कि बिना किसी हिचक के भक्ति करे और ईश्वर की परम इच्छा पर हर काम छोड़ दे। इससे वह इस जन्म में तथा अगले जन्म में सुखी रह सकेगा।

त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां
 त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ।
 अञ्जस्तरेम भवताप्रजदुस्तरं यद्
 ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम्हें; तात—हे पुत्र; न—नहीं; नार्हसि—चाहिए; च—तथा; माम्—मुझ; कृपणाम्—अत्यन्त दीन को;
 अनाथाम्—रक्षकविहीन, अनाथ को; त्यक्तुम्—छोड़ना; विचक्ष्व—देखो; पितरम्—पिता को; तव—तुम्हारे; शोक-
 तप्तम्—शोक संतप्त; अञ्जः—सरलतापूर्वक; तरेम—हम पार कर सकते हैं; भवता—तुम्हारे द्वारा; अप्रज-दुस्तरम्—बिना
 पुत्र के पार करना दुष्कर; यत्—जो; ध्वान्तम्—अंधकार का राज्य; न याहि—दूर मत जाओ; अकरुणेन—निर्दय, क्रूर;
 यमेन—यमराज के साथ; दूरम्—दूर।

प्यारे बेटे! मैं असहाय एवं अत्यधिक शोकाकुल हूँ? तुम्हें मेरा साथ नहीं छोड़ना चाहिए। तुम अपने शोकाकुल पिता की ओर तो देखो। हम (दोनों) असहाय हैं क्योंकि पुत्र के बिना हमें घोर नरक में यातनाएँ सहनी पड़ेंगी। तुम्हीं एकमात्र सहारा हो जिसके बल पर हम इस अंधकारमय प्रदेश से उबर सकते हैं; अतः मेरी प्रार्थना है कि तुम निर्दयी यमराज के साथ और आगे न जाओ।

तात्पर्य : वैदिक आदेशानुसार मनुष्य को पत्नी स्वीकार करनी चाहिये जिससे वह पुत्र उत्पन्न करके अपने को यमराज के चंगुल से छुड़ा सके। जब तक पितरों को पिंडदान करने के लिए पुत्र नहीं होता, तब तक यमराज के लोक में यातना सहनी पड़ती है। राजा चित्रकेतु यह सोचकर अत्यन्त शोकाकुल था कि उनका पुत्र यमराज के साथ चला जा रहा है, अतः उन्हें पुनः यातना सहनी होगी। ये सूक्ष्म नियम कर्मियों पर लागू होते हैं। यदि मनुष्य भक्त बन जाता है, तो कर्म के नियम उस पर लागू नहीं होते।

उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्या-
 स्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ।
 सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान्यरीतो
 भुङ्क्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

उत्तिष्ठ—उठो; तात—मेरे प्यारे बेटे; ते—वे; इमे—ये सब; शिशवः—बालक; वयस्याः—साथी, संगी; त्वाम्—तुमको; आह्वयन्ति—बुला रहे हैं; नृप-नन्दन—हे राजपुत्र; संविहर्तुम्—तुम्हारे साथ खेलने के लिए; सुप्तः—तुम सोये हुए हो; चिरम्—देर से; हि—निस्सन्देह; अशनया—भूख से; च—भी; भवान्—आप; परीतः—परास्त; भुङ्क्ष्व—खाओ; स्तनम्—(अपनी माँ के) स्तनों को; पिब—पियो; शुचः—शोक; हर—हरो, दूर करो; नः—हमारा; स्वकानाम्—सम्बन्धियों के।

प्यारे बेटे! तुम बहुत देर से सो रहे हो। अब उठ जाओ। तुम्हारे संगी तुम्हें खेलने के लिए बुला रहे हैं। चूँकि तुम्हें बहुत भूख लगी होगी इसलिए उठो, मेरे स्तनों से दूध पिओ और हमारा शोक दूर करो।

नाहं तनूज ददृशे हतमङ्गला ते
मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ।
किं वा गतोऽस्यपुनरन्वयमन्यलोकं
नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अहम्—मैंने; तनू-ज—(मेरे शरीर से उत्पन्न) मेरे प्यारे पुत्र; ददृशे—देखा; हत-मङ्गला—हतभाग्य होने से; ते—तुम्हारा; मुग्ध-स्मितम्—मनोहर हँसी से युक्त; मुदित-वीक्षणम्—बन्द नेत्रों से; आनन-अब्जम्—कमल तुल्य मुख; किं वा—अथवा; गतः—चले गये; असि—हो; अ-पुनः—अन्वयम्—जहाँ से फिर कोई नहीं लौटता; अन्य-लोकम्—अन्य लोक अथवा यमलोक को; नीतः—ले जाये जाकर; अघृणेन—क्रूर यमराज द्वारा; न—नहीं; शृणोमि—सुनती हूँ; कलाः—अत्यन्त मधुर; गिरः—तोतली बोली; ते—तुम्हारी।

प्रिय पुत्र! मैं सचमुच अभागिनी हूँ क्योंकि मैं अब तुम्हारे मुख पर मन्द हँसी नहीं देख सकती हूँ। तुमने सदा के लिए आँखें बन्द कर ली हैं; अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँची हूँ कि तुम इस लोक से दूसरे लोक में ले जाये गये हो जहाँ से तुम लौट नहीं पाओगे। बेटे! मैं तुम्हारी मनमोहक वाणी अब और आगे नहीं सुन सकती हूँ।

श्रीशुक उवाच

विलपन्त्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः ।
चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी बोले; विलपन्त्या—विलाप करती पत्नी के साथ; मृतम्—मृत; पुत्रम्—पुत्र के लिए; इति—इस प्रकार; चित्र-विलापनैः—अनेक प्रकार से विलाप करते हुए; चित्रकेतुः—राजा चित्रकेतु; भृशम्—अत्यधिक; तप्तः—व्याकुल; मुक्त-कण्ठः—फूट-फूट कर; रुरोद—रोने लगा; ह—निस्सन्देह।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा—इस प्रकार अपने प्रिय पुत्र के लिए विलाप करती हुई अपनी पत्नी के साथ ही राजा चित्रकेतु भी अत्यन्त शोक से संतप्त होकर फूट-फूट कर रोने लगा ।

तयोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्योस्तदनुव्रताः ।

रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥ ६० ॥

शब्दार्थ

तयोः—उन दोनों के; विलपतोः—विलाप करते हुए; सर्वे—सभी; दम्-पत्योः—अपनी पत्नी सहित राजा; तत्-अनुव्रताः—उनके अनुयायी; रुरुदुः—जोर-जोर से रोने लगे; स्म—निस्सन्देह; नराः—पुरुष; नार्यः—नारियाँ, स्त्रियाँ; सर्वम्—समस्त राज्य; आसीत्—हो गया; अचेतनम्—अचेत सा ।

राजा तथा रानी को विलाप करते देखकर उनके समस्त अनुयायी स्त्री तथा पुरुष भी रोने लगे । इस आकस्मिक घटना से राज्य-भर के सभी नागरिक अचेत-से हो गये ।

एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ।

ज्ञात्वाङ्गिरा नाम ऋषिराजगाम सनारदः ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; कश्मलम्—वेदना; आपन्नम्—प्राप्त करके; नष्ट—गत, रहित; संज्ञम्—चेतना; अनायकम्—असहाय; ज्ञात्वा—जानकर; अङ्गिराः—अंगिरा; नाम—नामक; ऋषिः—साधु पुरुष; आजगाम—आ गये; स-नारदः—नारद मुनि के साथ ।

जब ऋषि अंगिरा ने समझ लिया कि राजा शोक-समुद्र में मृत-प्राय हो चुका है, तो वे नारद ऋषि के साथ वहाँ गये ।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के छठे स्कन्ध के अन्तर्गत “राजा चित्रकेतु का शोक” नामक चौदहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए ।